

कर अपनी गोदमें मुझे लिटा कर बोली—“प्रमोद, सच्ची-सच्ची कहूँ तो मैं ही पराई हो गई हूँ। तुम सब लोगोंके लिए मैं पराई हूँ। तेरी मर्ने मुझे धक्का देकर पराया बना दिया है। पर मुझे जहाँ भेज दिया है, प्रमोद, मेरा मन वहाँका नहीं है। तू एक काम करेगा ?”

मैं बड़ी उत्सुकतासे ऊपर उनके मुँहकी ओर देखता रहा। कहना चाहता था कि तुम्हारा काम नहीं करूँगा तो प्रमोद बनकर मैंने यह जनम पाया क्यों है ?

“ करेगा ? ”

दुबारा यह प्रश्न सुनकर मैं तत्परतासे उनकी गोदमेंसे उठ बठा। कहा—

“ अभी करूँगा, बुआ। कहो। ”

वह कुछ देर एकटक मुझे देखती रहीं। फिर लज्जितभावसे मुस्कराकर बोली—“नहीं नहीं, कुछ नहीं।”

मैंने तब उनका हाथ पकड़कर कहा—

“ सच-सच बताओ, बुआ। मैं ज़रूर करूँगा। ”

“ शीलाके जायगा ? ”

“ जाऊँगा। ”

“ जाकर क्या करेगा ? ”

मैं असमंजसमें उनकी ओर देखता रह गया। वह बोली—
“नहीं नहीं, मैं हँसी कर रही थी। कोई काम नहीं।”

उसके बाद मानों हठपूर्वक अपनी लाई हुई चीज़ें मुझे दिखाने लगीं। और चीज़ोंमें एक छोटी बंदूक भी थी। वह

मुझे बहुत पसंद आई। बुआने पूछा—“बंदूक तुम्हें अच्छी लगती है ?”

मैंने कहा—“बंदूकसे कौओंको मारा करूँगा। कौए मुझे बड़े बुरे लगते हैं।”

बुआ बोलीं—“बंदूकसे आदमी भी मर जाते हैं, भइया। इसीसे खिलौना लाई हूँ।—मरना क्या होता है, क्यों रे, तू जानता है ?”

“जानता हूँ।”

“भला क्या होता है ?”

“मर कर आदमी—मर जाता है।”

बुआ हँस आई। फिर चुप हो रहीं। फिर बोलीं—

“मैं मर जाऊँ तो तू क्या करे ?”

मैंने कुछ जवाब नहीं दिया, बुआको धूर-धूर कर देखता रहा। मैं चाहता था कि वह जान जायें कि मैं बच्चा नहीं हूँ। मैं सब जानता हूँ। बुआ मौतकी मजाक करें यह बिल्कुल ठीक बात नहीं है। वह मर सकती है, तो क्या मैं नहीं मर सकता ? मैं बड़े मजेमें मर सकता हूँ। बुआको यह बिल्कुल माझम नहीं है कि मैं किस आसानीसे मर सकता हूँ। उनको पता भी नहीं, पर सच्ची बात यह है कि उनके बाद मैं जी ही नहीं सकता, जीऊँगा ही नहीं। लेकिन मैं हूँ तबतक देख लूँगा कि बुआको मारनेवाला कौन है।

अगले रोज़ एक काग़ज लेकर मुझे शीलाके यहाँ भेजा गया। मैं शीलाको जानता था, उसके कोई बड़े भाई हैं यह

मैं नहीं जानता था । कागज़ उन्हींके हाथमें देनेको कहा गया था । शीलाके बड़े भाई मुझे बड़े अच्छे लगे । मैंने जब वह कागज़ उन्हें दिया तब उसे लेकर वह मेरी उपस्थितिको इतना भूल गये कि मुझे अपना अपमान मालूम हुआ । लेकिन फिर उन्होंने मुझे बहुत ही प्रेम किया, चूमा, गोदमें लिया, कंधेपर बिठाया और तरह-तरहकी खानेकी चीज़ें दीं । शीला भी मुझको अच्छी लगी । मेरा जी हुआ कि कोई वहाना हाथ लगे तो मैं यहाँ रोज़ आया करूँ । शीलाके भाईने भी एक चिट्ठी लिखकर मेरी जेबमें रख दी । फिर कहा—‘तुम्हारा नाम क्या है ? प्रमोद ! बड़े बहादुर हो तुम ।’ यह कहकर धरतीसे उठाकर मुझे चूम लिया । फिर कहा—‘यह कागज़ अपनी बुआको ही देना । है ना ?’

कागज़ मुझे अपनी माँको देनेको कहा जाता तो भी मैं पहले बुआको ही देता । मैंने कुछ जवाब नहीं दिया ।

शीलाके भाईने चाकलेटके कई पैकेट मेरे कोटकी दोनों जेबोंमें ठूस दिये । कहा—‘तुम बड़े अच्छे लड़के हो । कौन-सी क्लासमें पढ़ते हो ?’

“सेविन्थ क्लास ।”

“सेविन्थ क्लास ! खूब ! प्रमोद, जाकर कहना मैं अभी एक महीना यहीं हूँ । समझे ?”

मैं खूब समझ गया था ।

“क्या समझे ?”

“—मैं एक महीना यहीं हूँ ।”

शीलाके भाई इसपर खूब हँसे—

“तुम नहीं भाई,—मैं, मैं, मैं !”

जो खत दिया था वह लिफाफेमें बंद नहीं था । बुआने भी ऐसे ही कागज़ मोड़कर दे दिया था । पर शीलाके भाई मुझको इतने अच्छे लगे कि मैं उनकी लिखावटकी सुंदरता देखना चाहता था । मैंने उसे खोलकर देखा । उसके अक्षर मुझे बहुत ही सुंदर मालूम हुए । मैंने सोचा कि मैं भी कभी ऐसी सुंदर अँग्रेजी लिख सकूँगा या नहीं । खतके ऊपरका My dear तो मुझको इतना अच्छा लिखा मालूम हुआ कि बहुत दिनों तक अपने पत्रोंके My dear को मैं वैसा ही बनानेकी कोशिश करता रहा । घर आकर मैंने पत्र सीधा बुआको दे दिया और वह उसको खोलकर तभी पढ़नेमें लग गई । खत बड़ा नहीं था । लेकिन कई मिनट तक वह उसे पढ़ती रही । यह भी भूल गई कि प्रमोद भी उनका कोई है और इस वक्त वह पास ही खड़ा है । काफी देरके बाद उन्होंने वहाँसे आँख हटाई, खतको धीमे धीमे तह किया और मुझको देखा—मानो उस वक्त मुझे वह पहचान नहीं रही थीं । मानों सब भूल गई कि क्या था, क्या है, क्या होगा । फिर उसी बेवकूफ भावसे मुझे देखते रहकर मानो यंत्रकी भाँति उस खतको फाड़कर नन्हे नन्हे टुकड़ोंमें कर दिया । मानों वह कुछ नहीं कर रहीं, जाने कौन करा रहा है । हलके-हलके चैतन्य उन्हें लौटा । मानो उन्होंने अब कुछ-कुछ जगत्को पहचाना । थोड़ी देर बाद बोलीं—“प्रमोद, अब तू वहाँ कभी मत

जाना। तुमसे जवाब लानेको किसने कहा था? कभी किसीका कोई खत लानेकी जरूरत नहीं है। समझा?"

मैं कुछ भी नहीं समझा था।

वह बोलीं—“तू इतना अनसमझ क्यों है प्रमोद! तू नहीं जानता कि मेरी शर्दी हो गई है?”

मैंने कहा—“मैं जानता हूँ, जानता हूँ।”

बोलीं—“तू कुछ नहीं जानता। तू गधा है। मेरे दिलमें आग लग रही है।—”

मैं चुप था।

“—तू जानता है दिलकी आग क्या होती है?”

किसी दिलकी आगको सचमुच मैं नहीं जानता था। लेकिन उस समय बुआको देखकर, उनकी उस क्षण-भरमें होकर उसी क्षण बुझ जानेवाली अनबूझ मुस्कानको देखकर मेरे मनकी पीड़ा बहुत घनी हो गई थी। मनमें होता था कि किस तरह मैं उनके काम आ जाऊँ कि उनका जी हलका हो। और नहीं तो उनके गले लगकर फूट ही पड़ूँ।

उन्होंने कहा—“देख प्रमोद, शीलाके भाईका कोई पैग़ाम आया कि मैं छतसे गिरकर मर जाऊँगी। मुझे उन्होंने क्या समझा है?”

मैं कहना चाहता था कि शीलाके भाईने कहा है कि वह अभी एक महीना यहीं हैं और कि वह मुझे बड़े अच्छे मालूम होते हैं। लेकिन तभी बुआने कहा—“जाकर यह शीलासे कह देना। मैं सच कहती हूँ, मैं मर जाऊँगी। मृणालका कौल झूठा नहीं होता।”

बुआने यह ऐसे कहा कि मानों अभी काफी नहीं हुआ, अभी तो और भी पक्की तौरपर अपनेको समझाना है कि ऐसी हालतमें मरना ही होगा, कुछ भी अन्य सोचना विचारना न होगा ।

उस समय उनको घरपर बस चार पाँच रोज़ ही रहना था । उसके बाद फूफा आएँगे और वह उन्हें ससुराल ले जाएँगे । ससुराल जानेके बारेमें वह उत्साहित नहीं मालूम होती थीं । ज्यो ज्यों जानेका दिन आता उनकी निगाह कुछ बँधती-सी जाती थी । जहाँ देखतीं, देखतीं रह जाती थीं । जैसे सामने उन्हे और कुछ नहीं दीखता, बस भाग्य दीखता है, और वह भाग्य चीन्हा नहीं जाता । ऐसी अपेक्षित पूछती-हुई-सी निगाहसे देखतीं मानों प्रश्न रोककर भी उत्तर माँगती हों कि 'मैं कुछ चाहती हूँ, पर अरे कोई बतायगा कि क्या?—'

अगले रोज़ फूफा आनेवाले थे । रातसे बुआकी तबीयत गिरी-गिरी हो रही थी । अपनी कोठरीमें एक अनबिछे तख़तपर लेटी थीं । मुझसे बोलीं—“प्रमोद, कल मैं चली जाऊँगी ।”

मैं चुप रहा । सिर दाब रहा था, दाबता रहा ।

बोलीं—“अब रहने दे ।”

मैंने कहा—“दवा तो तुम खाती नहीं हो—”

सुनकर मेरी ओर उनकी दृष्टि बँध गई । कुछ रुककर बोलीं—

“एक काम करेगा, प्रमोद ? शीलके भाई डाक्टरों पढ़ते हैं । मैं दवाका नाम लिख देती हूँ । तू उनसे ले आयगा ?”

मैं क्यों न ले आता ? उन्होंने कागज़पर अंग्रेज़ीमें एक नाम लिखकर दे दिया और मैं उस पुर्जेको लेकर दौड़ गया ।

पर उस पुर्जेको लेकर तो जैसे शीलाके भाई एकाएक मुझे पीटनेको उतारू हो गये । धमकाकर बोले—“ यह क्या है ? ”

“ बुआने दवाई मँगाई है । ”

“ दवा ? ”

“ हाँ दवा । उनके सिरमें दर्द है । ”

शीलाके भाईने आगे कुछ नहीं कहा । वह जोर जोरसे कमरेमें इधरसे उधर टहलने लगे । कागज़ तुड़-मुड़कर उनके हाथोंमें चिन्दी हो गया । उस कागज़की चिन्दीपर उनकी चुटकी सख्तीसे कस गई । ऐसी कि उनके हाथोंकी नसोंका तनाव देखकर मेरे मनमें जाने क्या क्या भाव होने लगे ।

कुछ देर बाद मैंने साहसपूर्वक पूछा—“ मैं जाऊँ ? ”

शीलाके भाई यह सुनकर टहलते-टहलते रुक गये । मुझे देखकर विनम्रभावसे वह बोले—“ मैं चलकर उनकी तबीयतका हाल देख नहीं सकता हूँ ? प्रमोद, मुझे ले चलोगे ? ”

मैंने कहा—“ नहीं । जीजी छतसे गिरकर मर जाएंगी । ”

इसपर उन्होंने कुछ नहीं कहा । मैंने पूछा—“ दवा नहीं दीजिएगा ? ” उन्होंने मेरे मुँहपर मानों ललकारकर कहा—“ दवा ? ”

“ नहीं दीजिएगा तो मैं जाऊँ । ”

इसपर उन्होंने अपनी चुटकीसे दबी कागज़की गाँठको खोला और दोनों हाथोंके जोरसे उस छोट्टेसे कागज़के हजारों टुकड़े कर डाले । और फिर उन सबको गुड़ीमुड़ी करके

मेरी तरफ़ फेंक दिया । कहा—“यह है दवा । जाओ, ले जाओ ।”

इसके बाद किसी विशेष बात होनेकी मुझे याद नहीं । अगले रोज़ फूफा आये । मेरा मन उनकी तरफ़ खुला नहीं । न उन्होंने ही मुझे कुछ पूछा । बुआकी तबीयत कुछ विशेष गिर गई थी । लेकिन शिकायत कोई खास न थी । फूफाने सफ़रकी सब सुख-सुविधाका प्रबन्ध कर दिया है; बुआको तनिक कष्ट न होगा; यहाँसे जगह तीन सौ मील ही है तो; मोटरमें जाएंगे; न हुआ तो रास्तेमें दो-एक जगह पड़ाव कर लेंगे; डाक-बंगले जगह जगह हैं ही; पिता जी निश्चित रहें कि फूफा हमारी बुआको ज़रा भी किसी तरहकी तकलीफ़ न होने देंगे ।

पिताने कहा—“अच्छा अच्छा । लेकिन—”

फूफाने कहा—“जी आप बिल्कुल फ़िक्र न कीजिए । उन्हें तकलीफ़ किसी किस्मकी न होगी ।”

पिताने कहा—“उसकी तबीयत ज़रा—”

फूफाने बताया—“यहाँकी आबोहवा किसी क़दर—। ज़रा तबदीली चाहिए । सितम्बर शुरू हुआ कि काश्मीर जानेका इरादा रखता हूँ । सितंबर अक्टूबर काश्मीरके आइडियल महीने हैं । गुलमर्गकी हवा वह है कि—”

अगले रोज़ फूफा पूरे इन्तज़ाम और प्रेमके साथ बुआको लिवा ले गये ।

३

उसके कुछ दिन बाद हम लोगोंको इधर पूरवकी तरफ आना पड़ा। मैं वहाँ स्कूलमें दाखिल हुआ और एक क्लास ऊपर चढ़ गया। बुआ मुझे भूलती न थीं। उनके खत आते थे पर वे संक्षिप्त होते थे। माँसे मालूम होता था कि बुआ अच्छी हैं और खतमें और कुछ नहीं लिखा है। बाबूजीसे बुआकी चर्चा चलाता तो वह अधिकतर चुप रह जाते थे। उनका मन सुखी नहीं था। मेरी समझमें कुछ भी नहीं आता था। मैं कहता—“बाबूजी, मुझे भेज दीजिए। मैं बुआको ले आऊँगा।”

वह दिलचस्पी लेकर कहते—“तू जायगा ?” लेकिन देखते-देखते वह सब दिलचस्पी लीन हो जाती और कहते—“कहाँ जायगा तू ? मृणाल तो अपने घरकी है। अपने सुखसे रहें। हमें क्या।”

ब्याहके कोई आठ-दस महीने बादकी बात होगी। देखते क्या है कि बिना कुछ खबर दिये बुआ एक नाँकर लड़केके साथ घर चली आई हैं। पिताजी इस बातसे अप्रसन्न हुए। पर क्या वह प्रसन्न भी नहीं हुए ? माँने कोई नाराजगी नहीं प्रकट की। बल्कि उन्होंने तो परोक्षमें फफाको काफी सर्द-गर्म तक कह डाला।

बुआ आई तो मेरे तो पुराने दिन ही लौट आये। पर मैं देखता कि बुआमें बहुत परिवर्तन होता जाता है। उनकी तबीयत थिर नहीं है। इस बड़ी खुश बोल रही हैं तो अगली

घड़ी अँधेरेमें अकेले जाकर चुप पड़ जाती हैं। उनकी शारीरिक अवस्था भी ठीक नहीं थी। सारी देह पीली पड़ी थी और उनको गर्भ था। जी मिचलाया रहता था और खाना-पीना कुछ अच्छा नहीं लगता था। हर बातसे अरुचि मालूम होती थी। मैंने अकेलेमें उनके पास बैठकर पूछा—“अब तो यहीं रहोगी न बुआ ? जल्दी तो नहीं जाओगी ?”

बुआने कहा—“नहीं जाऊँगी। पर मुझसे आने जानेकी बात क्यों करता है ? अपने पढ़ने-लिखनेकी बात किया कर।” कहते-कहते आँखें उनकी जाने कैसी हो आई थीं और वाणी काँपकर रुकना चाहती थी।

मैंने अपनी समझमें जाने क्या कुछ समझकर कहा—“तो बुआ, वहाँ जानेकी कभी जरूरत नहीं है। मैं नहीं जाने दूँगा।”

बुआने कहा—“भला किस जोरसे नहीं जाने देगा ?”

“बस कह दिया, नहीं जाने दूँगा।”

बुआ व्यंगमें हँसी—

“तू रोकनेकी बात करता है तो पहले क्यों नहीं रोक लिया था ? अब किया कुछ नहीं हो सकता।”

उनकी उस समयकी मुद्रा देखकर मुझे जोश हो आया। बोला—“क्यों कुछ नहीं हो सकता ? सब कुछ हो सकता है। देखूँ फूफा कैसे ले जाते हैं।”

बुआने कहा—“बड़े वीर बनते हो प्रमोद। पर इस बारेमें बुआसे क्या कुछ भी पूछनेकी नहीं है ? वह बुआ यहाँकी

नहीं है, वहींकी है । अपने फूफाकी चीजोंको छीननेवाले तुम होते कौन हो ?”

मैं उन सारी बातोंके मर्मको नहीं समझ सका था । लेकिन बुआकी वारणीकी वेदना मुझे छुए बिना न रहती थी । मैं जान गया था कि अपनी समुरालकी यादपर उन्हें कष्ट होता है । लेकिन फिर इसमें दुविधाकी क्या बात है । वह जगह नहीं पसंद है तो वहाँ न जायँ । बस ।

लेकिन जिम आसानीसे मैंने ‘बस’ कह दिया वैसी सरल बात नहीं थी, यह मैं आज खूब अच्छी तरह जानता हूँ । विवाहकी प्रण्यि दोके बीचकी ही प्रण्यि नहीं है, वह समाजके बीचकी भी है । चाहनेसे ही वह क्या टूटती है ? विवाह भावुकताका प्रश्न नहीं, व्यवस्थाका प्रश्न है । वह प्रश्न क्या यों टाले टल सकता है ? वह गाँठ है जो बँधी कि खुल नहीं सकती, टूटे तो टूट भले ही जाय । लेकिन टूटना कब किसका श्रेयस्कर है ? पर आठवीं क्लासका विद्यार्थी मैं यह सब नहीं जानता था । इसलिए उस समय अति-सम्पूर्ण भावसे मैंने बुआको आश्वासन दे दिया कि वह मदा इसी घरमें रहेंगी । देखूँ, कौन फूफा होते हैं जो ले जायँ । ऐसा मन न करो, बुआ । फिर क्या है । यह प्रमोद बढ़ा होकर खूब कमाएगा और तुम्हारी खूब सेवा करेगा और तुम्हें कुछ कष्ट न होने देगा ।

बुआको विन्कुल भी मेरी बातोंसे दारस नहीं हुआ यह भी मैं नहीं कह सकता । तब क्या उनके मुखपर हठात् कुछ

संतोषकी आभा नहीं आ झलकी थी ? हलके हँसकर बोलीं—
“तू ऐसा वीर है, प्रमोद, तो मेरी नैया पार लग जायगी ।
क्यों ? अब यह बता कि तू अपनी क्लासमें अव्वल है या नहीं ?”

अव्वल हूँ कि फिसड्डी होऊँ, लेकिन उस समय तो मैं यह
देखना चाहता था कि बुआके मनमें कोई चिंता-क्लेश नहीं रह
गया है । मैंने पूछा—“तुम सच बताओ, वहाँ जाना चाहती
हो या नहीं ?”

बुआने कहा—“सच बताऊँ ?”

“हाँ, बिलकुल सच-सच बताओ ।”

बुआने हँसकर कहा—“क्यों सच-सच बताऊँ ?”

मैंने नाराज़ होकर कहा—“नहीं बताओगी ?”

बोलीं—“अच्छा, सच-सच बताती हूँ । मैं तेरे साथ रहना
चाहती हूँ । रक्खेगा ?”

यह कहकर उन्होंने ऐसे देखा कि मैं झेंप गया और तब
उन्होंने मुझे खींचकर अपनी गोदमें ले लिया । फिर एकाएक
मुझे अपनेसे चिपटाकर बोलीं—“एक बात बता । तुझे बेंत
खाना अच्छा लगता है ?”

मैंने कहा—“बेंत !”

बोलीं—“मैं एक बार तुझे बेंतोंसे पीटना चाहती हूँ ।
देखूंगी, तुझे कितना अच्छा लगता है ।”

बुआ अब तरफ़िसे बातें कर रही थीं । मैंने कहा—“ये
कैसी बातें कह रही हो ?”

बोलीं—“सच-सच कहती हूँ, प्रमोद । किसी औरसे नहीं फहा, तुम्हें कहती हूँ । बेंत खाना मुझे अच्छा नहीं लगता । न यहाँ अच्छा लगता है, न वहाँ अच्छा लगता है । ”

मैं आश्चर्यमें रह गया । बोला—“क्या कहती हो बुआ ? वह मारते हैं ?”

“हाँ मारते हैं । ”

“बेंतसे मारते हैं ?”

“हाँ, बेंतसे मारते हैं । ”

“क्यों मारते हैं ?”

“मैं खराब हूँ, इस लिए मारते हैं । ”

सुनकर मुझसे उस समय बुआके चेहरेकी ओर देखा नहीं गया । आवेगसे भर कर मैंने अपना मुँह उनकी छातीमें दुबका लिया । वहाँ दुबका हुआ मैं चाहने लगा कि बुआको अपनी गोदमें ले लेता और धीमे धीमे उनके माथेपर थपकी ठेकर कहता—‘वह सब भूल जाओ, बुआ । बुरा-खराब सब भूल जाओ । वह भी जगह है जहाँ कोई खराब नहीं है और जहाँ कोई बेंत नहीं है । हम दोनों वहीं चलकर रहेंगे ।’ यह सोचता हुआ मैं बुआकी छातीमें चिपका रहा । मुझे माझम हुआ कि बुआके मनमें उच्छ्वास भर आया है और उनकी आँखोंकी एकाध बूँद भी मुझपर गिरी ।

मुझे सारी बातें ज्ञात नहीं, लेकिन पिता और फफामें कुछ पत्र-व्यवहार हुआ था । पत्र-व्यवहार काफी लम्बा हुआ । तीन महीने बुआ हमारे ही यहाँ रहीं । अंतमें निर्णय हुआ कि

फूफ़ा उन्हें ले जा सकते हैं। पिता शायद इस बातके लिए तैयार हुए थे कि अगर आइंदा इस तरह बुआ बिना फूफ़ाकी मर्जी चली आएँगी तो वह अपने घरमें आश्रय न देंगे। फूफ़ाने पिताके सामने अपनी पत्नीपर कुछ अभियोग भी लगाये थे जिनको फिर उन्होंने क्षमा-प्रार्थना-पूर्वक वापिस भी ले लिया था।

एक बार मैं बाबूजीके पास था। तभी बुआ वहाँ आई। आकर चुपचाप एक तरफ एक बिछे तख़्तपर बैठ गई।

बाबूजीने कहा—“मृणाल, कहो कैसी तबीयत है?”

“अच्छी है।”

“यहाँ शायद तुम्हारा मन नहीं लगता मालूम होता है।”

मृणाल चुप।

“उनकी इस इतवारको आनेकी चिठी आई है। पाँच रोज़ हैं। मिनी, देखो अब ऐसी ग़लती मत करना। वह आदमी भले हैं इससे बात बन भी गई। नहीं तो बेटा, ऐसा किया करते हैं? थोड़ी बहुत लड़ झगड़ होती ही है। पर पतिके घरके अलावा स्त्रीको और क्या आसरा है? यह झूठ नहीं है, मृणाल, कि पत्नीका धर्म पति है। घर पति-गृह है। उसका धर्म, कर्म और उसका मोक्ष भी वहीं है। समझती तो हो बेटा।”

कहते-कहते पिताकी वाणी क्षमाप्रार्थिनी हो गई थी। बुआ चुप बैठी रहीं। थोड़ी देर बाद पिताने कहा—“कहो, कहो, मृणाल। तुम कुछ कहना चाहती हो?”

बुआने कहा—“मेरा जी अच्छा नहीं रहता है । मैं अभी जाना नहीं चाहती हूँ ।”

“अभी नहीं जाना चाहती हो ?”

मृणाल चुप ।

“लेकिन वह तो अभी ही ले जाना चाहते हैं ।”

चुप ।

बाबूजी इस चुप्पीपर कुछ अस्थिर हो आये । उन्होंने पहले तो मुझे देखकर कहा—‘जाओ, प्रमोद, अपना सबक देखो ।’ मैं तुरंत नहीं उठ गया, इसपर नाराज़ होकर बोले, ‘सुनते नहीं हो ? जाओ ।’ मैं कमरेसे तो बाहर आ गया लेकिन पूरी तरह चला नहीं गया । उसके बाद पिताजीने कहा—“सुनो मृणाल, अभी भेजनेकी मेरी भा राय नहीं थी । तुम्हारी हालत नाजुक है । लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ ?”

मृणाल कुछ नहीं बोली ।

बाबूजी कमरेमें टहलने लगे । कुछ देरतक वह भी कुछ नहीं बोले । फिर कहा—‘मिनी, सच बताओ, क्या बात है ?’ यह कहकर कुछ ठहरे, मृणाल चुप रही, तो फिर टहलने लगे । एकाएक रुककर बोले—‘मृणाल, मैं देखता हूँ, तुम्हें तकलीफ है । बताओगी नहीं तो मैं कैसे जानूँगा ? क्या करूँगा ? मिनी, तुम्हें पिताजीकी तो क्या याद होगी । तू नन्हीं-सी थी तभी पिताजी उठ गये । माँ तो तैने देखीं ही कब हैं । सबकी जगह मैं ही तेरे लिए रह गया । मुझसे न कहेगी तो किससे कहेगी ? मृणाल, बेठा, सच बता क्या बात है ।’

बुआने कहा—“कुछ भी बात नहीं है बाबूजी, पर मैं जाना नहीं चाहती हूँ।”

“जाना नहीं चाहती हो, यह तो मैं देखता हूँ। पर भला ऐसा कहीं होता है। और कबतक नहीं जाओगी?”

“बिल्कुल नहीं जाऊँगी।”

बाबूजीने कुछ भीँककर कहा—“तो क्या करोगी?”

“आप यहाँसे निकाल देंगे तो यहाँसे भी निकल जाऊँगी।”

बाबूजीको इसपर रोष हो आया। बोले—

“कहाँ निकल जाओगी?”

“पिताजी मुझे नन्हीं छोड़ जहाँ चले गये हैं, कोई राह बता दे तो मैं वहीं जाना चाहती हूँ।”

इसके बाद मुझे कुछ नहीं सुनाई दिया। पिताजीके फर्श-पर जोर-जोरसे चलनेकी आवाज़ मुझे अवश्य आई। दो एक बार खॉसनेकी भी आवाज़ आई मानों कुछ बार-बार गलेमें भर आता हो। दो-तीन-चार-पाँच मिनट मैं प्रतीक्षामें रहा। पिताजीके तेज़ कदमोकी धमक, खॉसी और कभी जोरसे उठता हुआ उनका उच्छ्वास ही मुझे सुनाई दिया। आखिर मैं वहाँसे खिसक कर चला आया।

इसके बाद मिलनपर मैंने बुआसे पूछा—“बुआ, पिताजी भेजनेको कहते हैं?”

बुआने डपटकर कहा—“चुप रहा करो जी, प्रमोद, अपने कामसे काम रक्खा करो।”

मुझे उनका यह गुस्सा बिल्कुल समझमें नहीं आया। मैं भी

उस दिन तुनककर अपने अलग-अलग रहा । पर संध्या समय अचानक वह मुझे अपने गले लगाकर रोनेको हो आई । बोली—“तू रूठ गया प्रमोद ?”

थोड़ी देर बाद अपने आप कहने लगी—“बाबूजी मुझे भेजनेको कह रहे हैं । चली जाऊँ ?”

मैं क्या जवाब देता ।

उन्होंने मेरे कंधेपर हाथ रखकर कहा—“मुझे चले जाना चाहिए, क्यों प्रमोद ?”

मुझे चुप देख फिर वह बोली—“अच्छा जाने दे इस बातको । यह बता, मैं चली गई तो तू मुझे याद करेगा ?”

उस समय मैंने कहा—“बुआ, मैं तुम्हें पीछे बहुत याद करता था ।”

“मर जाऊँ, तो भी याद करेगा ?”

मैं तब समझदार था । कहा—“ऐसी बात मत करो, बुआ । मैं नहीं सुनता चाहता ।”

“अच्छी, एक बात बता । तू बड़ा हो जायगा तब मैं बुलाऊँगी तो तू आयगा ?”

“फौरन आऊँगा ।”

“कैसी भी हालतमें हुई, तू आयगा ?”

“हाँ, आऊँगा ।”

“तो सुन, मैं कहती हूँ तू नहीं आयगा । मैं तुम्हें बुलाऊँगी ही नहीं । कहती हूँ, तुम सब लोग मुझे भूल जाना । मैं जैसी गई वैसी मरी । इसके बाद मैं तुम लोगोंको बिल्कुल तकलीफ नहीं दूँगी ।”

थोड़ी देर बाद बुआने मुझसे पूछा—तू जानता है, पतिका घर क्या होता है ?

मैंने कहा कि मैं नहीं जानता ।

स्वर्ग होता है ।

मैंने मान लिया कि स्वर्ग होता होगा ।

लेकिन मेरे इस सहज भावसे मान लेनेसे उन्हें जैसे सान्त्वना नहीं हुई । बोलीं—

“वह तो स्वर्ग ही होता है । जिसके लिए ऐसा नहीं है, वही अभागिनी है ।”

मुझे चुप देख, वह आगे बोलीं—

“जानता है, स्वर्ग क्या होता है ?”

जल्दीसे अपने आप ही बोलीं—स्वर्ग बड़े आरामकी जगह होती है । वहाँ देवता रहते हैं ।

अगले सेवरे उनकी अवस्था बिल्कुल प्रकृतिस्थ मालूम होती थी । उन्होंने मँसे कहा कि धोबीके कपड़ोंके लिए कह दें, इतवार तक आ जायँ, क्यों कि फिर जाना है । दो-चार छोटी-मोटी चीज़ें भी बाज़ारसे मँगानेको कहीं । उस समय वह अपने सामानको ठीक सँगवानेमें प्रवृत्त दीखने लगीं । इस बक्सका सामान उसमें हो रहा है, उसका इसमें हो रहा है । इस बार पुस्तक कोई साथ नहीं ले जायँगी । पुस्तकें अच्छी चीज़ नहीं होतीं । ‘उन्हें’ अच्छी नहीं लगतीं । उनसे समय बरबाद होता है । नहीं, इस बार न नई न किसी प्रकारकी पुरानी किताबें बुआको चाहिएँ ।

दोपहर तक वह इसी प्रकार प्रवृत्त दीखी। फिर खाना खाकर जो लेटीं ती सिरमें जोरका दर्द हो आया। मैंने कहा—

“बुआ क्या है?”

बोलीं—“सिरमें दर्द है।”

“माथा दाव दूँ?”

“नहीं।”

“बाम लगा लो।”

“नहीं।”

“यू-डि-कलोनकी पट्टी लाता हूँ—”

“अरे नहीं-नहीं-नहीं—”

मालूम हुआ कि उन्हें दो-तीन रोज़से सज़ा कृञ्ज है। पेट पत्थर हो रहा है।

मैंने कहा—“डाक्टर—”

बोलीं—“कोई डाक्टर-फ़ाक्टर नहीं।”

मैंने कहा—“फिर—?”

बोलीं—“सब ठीक हो जायगा।”

दर्द बढ़ता ही गया। तीसरा पहर होते होते छूटपटानेकी नौबत आगई। लेकिन वह अकेली पड़ी रहीं, किसीको पास नहीं बुलाया। मैं कई बार बाबूजीको कहनेको उद्यत हुआ, पर बुआने ऐसी झिड़की दी कि मेरी हिम्मत न हुई। अब उनको पेटमें भी तकलीफ़ मालूम होती थी। दर्द रह-रहकर उठता था, जैसे कोई भीतर बैठा दम ले लेकर आँतें ऐंठ रहा हो। दर्दके मारे उनकी आकृति भयंकर हो उठती थी।

मैं नहीं जानता कि मैं किस प्रकार सब सह गया और ख़बर किसीको न दी। मैं कहने जानेको उद्यत होता था और वह अपनी क़सम दिलाकर मुझे रोक लेती थीं। कहते कहते कह उठतीं कि तुझे मेरी मौतका ही पातक लगे जो तू किसीसे कहे।

मैंने कहा—फिर कैसे होगा ?

बोलीं—पेटका दर्द है, अपने आप सब साफ़ हो जायगा। देख, बाज़ार जाय तो ज़रा जमालगोटा ले आना। याद रहेगा—जमालगोटा ?

मैं अब बुआके बारेमें शंकित-चित्त हो गया था। पूछा, यह क्या चीज़ होती है ?

इस दर्दमें भी तनिक हँसकर उन्होंने कहा—तू अकलमंद हो रहा है, प्रमोद। पर वह मरनेकी चीज़ नहीं होती है। ले तो आयगा न ?

मैंने पूछा—उससे तबीयत ठीक हो जायगी ?

“हाँ, हो जायगी। जायगा ?”

जमालगोटेके सेवनसे उनकी तबीयतका जो हाल हुआ वह कहना बृथा है। माता पिता दोनों चिन्तित हो गये। मैंने भयके मारे कुछ नहीं कहा। आशंका हो गई कि कहीं गर्भ न जाता रहे। वह तो न गया; पर और सब कुछ हो गया। तीन रोज़में उनका ऐसा मुँह निकल आया कि तरस आता था। जैसे मर कर जियी हो। करुणा होती थी, लेकिन करुणा हृद लाँघकर क्रोध हो जाती है क्या ? गुस्सेमें भरकर